12.2.1.9. तर्कवाक्य के अर्थ का चित्रण सिद्धान्त (The Picture Theory of the Meaning of a Proposition)—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विटगेन्स्टाइन एक ही प्रकार के तथ्यों को मानते हैं जिनका पूर्ण योग यह विश्व है। इन तथ्यों का वर्णन आणविक तर्कवाक्यों के माध्यम से हो जाता है। अन्य प्रकार के जितने भी वर्णनात्मक तर्कवाक्य हैं उनका विश्लेषण आणविक तर्कवाक्यों के द्वारा ही कर लिया जा सकता है। इस प्रकार अन्य सभी वर्णनात्मक तर्कवाक्य आणविक तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन ही हैं।

यहाँ एक प्रश्न यह उठ सकता है कि किसी आणविक तर्कवाक्य का अर्थ क्या है और जो भी उसका अर्थ है उसे ही उसका अर्थ क्यों माना जाता है? हम इस प्रश्न का उत्तर विटगेन्स्टाइन के मत के अनुसार इस प्रकार दे सकते हैं। किसी भी तर्कवाक्य का अर्थ उसके द्वारा वर्णित वस्तुस्थिति है। और वह वस्तुस्थिति उस तर्कवाक्य का अर्थ इसलिए है कि वह तर्कवाक्य उस वस्तुस्थिति का चित्र है। यही मत अर्थ का चित्र-सिद्धान्त है। अब हम इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करेंगे।

हमने ऊपर देखा है कि नाम का अर्थ उसका नामी होता है जो अस्तित्ववान् होता है। नामी यदि अस्तित्ववान् नहीं है तो नाम निरर्थक है। तर्कवाक्य के साथ ऐसी बात नहीं है। यह सही है कि तर्कवाक्य किसी वस्तुस्थिति का ही वर्णन करता है। किन्तु उस वस्तुस्थिति को अस्तित्ववान् होने की आवश्यकता नहीं है। वह मात्र सम्भाव्य हो सकती है। जब वह वस्तुस्थिति वास्तविक हो जाती है तब उसका वर्णन करनेवाला तर्कवाक्य सत्य हो जाता है। किन्तु किसी भी तर्कवाक्य को अर्थपूर्ण होने के लिए सत्य होने की आवश्यकता नहीं है। असत्य तर्कवाक्य भी अर्थपूर्ण होता है। अब प्रश्न उठता है कि किसी तर्कवाक्य का अर्थ किसी विशेष सम्भाव्य या वास्तविक वस्तुस्थिति के वर्णन में ही क्यों निहित है तथा कोई

---

1. 'A thought is a proposition with sense' *(Tractatus—4)*

Scanned by TapScanner

तर्कवाक्य किसी विशेष वस्तुस्थिति का वर्णन क्यों कहा जाता है? विटगेन्स्टाइन इसके उत्तर में कहते हैं कि तर्कवाक्य वस्तुस्थिति का चित्र होने के कारण ही वर्णन कर सकता है और अर्थवान् हो सकता है। 'यह लाल है' एक विशेष लाल वस्तु का चित्र है। और यही कारण है कि 'यह लाल है' उस लाल वस्तु का वर्णन है। लेकिन 'यह लाल है' उस लाल वस्तु का चित्र क्यों माना जाता है? विटगेन्स्टाइन कहते हैं कि तर्कवाक्य में ठीक उतने ही अंग है जितने अंग वस्तुस्थिति में हैं तथा तर्कवाक्य के अंगों में वही व्यवस्था एवं क्रम है जो वस्तुस्थिति के अंगों में है। इस प्रकार तर्कवाक्य तथा वस्तुस्थिति में पूर्ण अनुरूपता है। ऐसा इसलिए है कि दोनों का तार्किक रूप (logical form) एक है। इसी कारण से तर्कवाक्य वस्तुस्थिति का चित्र (picture) होता है। तर्कवाक्य का अर्थ वस्तुस्थिति इसलिए है कि दोनों में एक ही तार्किक रूप विद्यमान है। अब प्रश्न उठता है कि क्या तार्किक रूप का वर्णन किया जा सकता है? विटगेन्स्टाइन इसका नकारात्मक उत्तर देते हैं। उनके अनुसार किसी भी वस्तुस्थिति के बारे में भाषा के माध्यम से ही वर्णन किया जा सकता है और कोई भी वर्णन करना तर्कवाक्य तथा वस्तुस्थिति में एक ही तार्किक रूप के विद्यमान होने के कारण ही सम्भव होता है। अतः जिसके माध्यम से वर्णन करना सम्भव होता है वह स्वयं वर्णन का विषय नहीं बन सकता है। जो चित्रण सम्भव बनाता है वह तर्कतः चित्रण का विषय नहीं हो सकता। अतः विटगेन्स्टाइन कहते हैं कि 'तार्किक रूप' का वर्णन नहीं हो सकता, वह तो अपने आपको को केवल प्रदर्शित ही कर सकता है।

12.2.1.10. वस्तुस्थितियों की पारस्परिक भिन्नता एवं स्वतंत्रता (Mutual Difference and Independence of States of Affairs)—विटगेन्स्टाइन के अनुसार जितनी भी वस्तुस्थितियाँ हैं वे एक-दूसरे से पूरी तरह भिन्न तथा स्वतंत्र हैं। किसी भी वस्तुस्थिति से किसी दूसरी वस्तुस्थिति का अनुमान नहीं किया जा सकता। हम साधारणतः कारण-कार्य के सम्बन्ध के आधार पर अनुमान करते हैं। किन्तु विटगेन्स्टाइन के अनुसार ऐसे सम्बन्ध को मानना एक अन्धविश्वास है। उनके अनुसार हम ऐसा नहीं कह सकते कि कल सूर्योदय होगा ही। ऐसा कहना मात्र एक कल्पना करना है। वस्तुस्थितियों में परस्पर कोई लगाव नहीं है। उन्हें किसी भी तरह आन्तरिक रूप से जोड़ा नहीं जा सकता। इस तरह हम देखते हैं कि विटगेन्स्टाइन अनेकवादी (pluralist) हैं, एकवादी (monist) नहीं।

12.2.1.11. सत्ता एवं विश्व (Reality and World)—अब यहाँ विटगेन्स्टाइन के सत्ता (reality) एवं विश्व (world) के विभेदपरक मत की चर्चा करना बहुत प्रासंगिक है। हमने ऊपर देखा है कि वस्तुस्थितियाँ सम्भाव्य या वास्तविक हो सकती हैं। जो वास्तविक वस्तुस्थितियाँ हैं वे तथ्य हैं। विश्व तथ्यों की समग्रता है। किन्तु सत्ता विश्व से अधिक व्यापक है, क्योंकि सत्ता में सम्भाव्य वस्तुस्थितियाँ भी सन्निहित हैं। प्रश्न उठता है कि ये सम्भाव्य वस्तुस्थितियाँ क्या हैं? स्पष्ट ही हम उन्हें तथ्य नहीं कह सकते। न ही हम उन्हें निषेधात्मक तथ्य कह सकते हैं; क्योंकि हमने ऊपर देखा है कि विटगेन्स्टाइन निषेधात्मक तथ्य स्वीकार नहीं करते। अब यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संभाव्य वस्तुस्थिति के स्वरूप को समझने के लिए हमें पहले वस्तुस्थिति की संरचना (structure) को समझना होगा। वस्तुस्थिति वस्तुओं (objects) का एक व्यवस्थित संग्रह है। जब इस संग्रह की मात्र सम्भावना रहती है, तब वस्तुस्थिति मात्र सम्भाव्य है। किन्तु जब संग्रह वास्तविक हो जाता है, तब वस्तुस्थिति वास्तविक हो जाती है और तब वह तथ्य कहलाती है। दोनों ही प्रकार की वस्तुस्थितियों के मूलतत्त्व वस्तुएँ ही हैं जो चिरंतन (eternal) है। सम्भाव्य वस्तुस्थितियों के मूलतत्त्वों के अस्तित्ववान् नहीं होने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। '' 'क' (जो एक वस्तु का नाम है) नहीं है'' बिलकुल निरर्थक वाक्य है, क्योंकि

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

कोई भी नाम नामी के अस्तित्व के बिना नाम नहीं हो सकता। सम्भाव्य वस्तुस्थितियों का अस्तित्ववान् नहीं होना निषेधात्मक तथ्यों का अस्तित्ववान् होना नहीं है। उसका तात्पर्य तो केवल इतना है कि संभाव्य वस्तुस्थितियाँ अस्तित्ववान् नहीं हैं।

12.2.1.12. सामान्य और विशेष(Universal and Particular)—वस्तुओं का चिरंतन होना इस बात पर भी निर्भर है कि वे सरल होती हैं। 'क लाल है' में 'क' एक नाम है जो क वस्तु का द्योतक है। इस वस्तु को हमें लाल रंग से पृथक् करके समझना होगा क्योंकि 'क लाल है' पुनरुक्ति नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि क को लाल, नीला, पीला, आदि गुणों से पृथक् समझना होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'क' एक सरल प्रतीक है जो एक सरल वस्तु का महज एक नाम है। और जो सरल है वह बिलकुल अपरिवर्तनशील है और फिर शाश्वत है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या लाल भी क की तरह एक सरल वस्तु ही है? यह तो स्पष्ट है कि 'क लाल है' एक आणविक तर्कवाक्य है और यह क के लाल होने की स्थिति को चित्रित करता है। हमने ऊपर देखा है कि कोई भी वस्तुस्थिति कुछ वस्तुओं की एक व्यवस्था होती है। तो क्या हम प्रस्तुत उदाहरण में यह कह सकते हैं कि यहाँ क और लाल जैसी दो वस्तुओं की व्यवस्था का चित्रण हुआ है? यदि इसका उत्तर स्वीकारात्मक हो तो 'क' की तरह 'लाल' भी एक नाम होगा और लाल को भी एक वस्तु ही मानना होगा। पर, चूँकि 'लाल' के अनेक उदाहरण मिलते हैं और मिल सकते हैं, इसलिये वह विशेष नहीं होगा, वरन् सामान्य होगा। और तब हम कह सकते हैं। कि वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं—विशेष (particular) और सामान्य (universal)। उपर्युक्त उदाहरण में क विशेष है और लाल सामान्य।

किन्तु विटगेन्स्टाइन के विचारों के सूक्ष्म विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे केवल विशेष वस्तुओं को ही मानते हैं, सामान्य वस्तुओं को नहीं। और जिसे हम सामान्य मानते हैं, वह उनके अनुसार वस्तु ही नहीं है, वरन् वस्तुओं की, जो सभी विशेष ही हैं, एक प्रकार की व्यवस्था है। कुछ वस्तुएँ क, ख, ग, आदि परस्पर इस प्रकार सम्बद्ध रहती हैं कि उनके सम्बन्ध का 'परिणाम' लाल है। यह सही है कि विटगेन्स्टाइन ने कुछ स्थानों पर यह लिखा है कि गुण भी वस्तुएँ हैं, किन्तु उनके विचारों का समग्र रूप से विचार करने पर युक्तिसंगत निष्कर्ष यही निकलता है कि उनके अनुसार गुण एवं सम्बन्ध वस्तुएँ नहीं है, वरन् वस्तुओं की व्यवस्थाएँ हैं। अतः वस्तुएँ सामान्य नहीं होतीं, वे सब के सब विशेष ही होती हैं।

12.2.1.13. क्या आत्मा का अस्तित्व है? (Is There any Existence of Soul ?)—विटगेन्स्टाइन के अनुसार तर्कवाक्यों के तीन ही भेद होते हैं—(1) पुनरुक्तियाँ (tautologies), (2) व्याघाती उक्तियाँ (contradictions) तथा (3) वर्णनात्मक उक्तियाँ (descriptive statements)। इनमें प्रथम दो तो वस्तुस्थितियों से बिलकुल ही असम्बद्ध हैं। वे कुछ भी 'कहते' नहीं। प्रतीकों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान अवश्य है, किन्तु वस्तुस्थिति से उनका किसी भी प्रकार का लगाव नहीं है। केवल वर्णनात्मक उक्तियों का वस्तुस्थिति से लगाव रहता है। अब प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे वर्णनात्मक तर्कवाक्य हो सकते हैं जिनका वस्तुस्थिति से बिलकुल ही सम्बन्ध नहीं हो? विटगेन्स्टाइन इसका नकारात्मक उत्तर देते हैं। उनके अनुसार यह तो सम्भव है कि कोई वर्णनात्मक तर्कवाक्य किसी तथ्य का वर्णन न हो और इस कारण वह असत्य हो, किन्तु उस तथ्य की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता। और उस तथ्य की सम्भावना ही उस असत्य तर्कवाक्य

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

का अर्थ है। इस प्रकार वर्णनात्मक तर्कवाक्यों की जो व्यापकता है वही व्यापकता वस्तुस्थितियों की अर्थात् विश्व की भी है। ऐसा नहीं है कि विश्व के कुछ भाग सिद्धान्ततः भाषातीत हों। इस प्रकार, भाषा की सीमा ही विश्व की सीमा है।

जैसा हमने ऊपर देखा है, वस्तुस्थितियाँ तो वस्तुओं की विभिन्न व्यवस्थाएँ हैं। क्या ऐसी व्यवस्थाओं में आत्मा का कोई स्थान रहता है? साधारण बोलचाल की भाषा में हम 'मैं सोचता हूँ.....', 'मैं जानता हूँ.....', जैसे वाक्यों का प्रयोग करते हैं। क्या 'मैं' भी एक नाम है जो किसी वस्तु का द्योतक है? यदि हाँ, तो तब हमें एक चिंतक या ज्ञाता के रूप में आत्मा को मानना ही होगा। किन्तु विटगेन्स्टाइन इस रूप में आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानते; क्योंकि आत्मा के अस्तित्व को मानने से एक तार्किक कठिनाई उपस्थित हो जाती है। यदि 'मैं' एक नाम है तो मैं एक वस्तु हो जाता हूँ। और तब मैं अन्य वस्तुओं की तरह वस्तुस्थितियाँ बनने में प्रयुक्त हो सकता हूँ। और तर्कतः वस्तुस्थितियाँ वे हैं जो निरीक्षणयोग्य होती हैं अर्थात् ज्ञेय होती हैं। लेकिन तब ज्ञेय का अंश होने के कारण मैं ज्ञाता नहीं हो सकता। और यदि मैं ज्ञाता नहीं हूँ तो 'मैं सोचता हूँ कि.....', या 'मैं जानता हूँ कि.....' सही अर्थ में तर्कवाक्य नहीं है। अतः विटगेन्स्टाइन ज्ञाता के रूप में आत्मा को नहीं मानते। किन्तु, वे जानने की क्रिया या सोचने की क्रिया को अस्वीकार भी नहीं करते। जानना, सोचना, आदि तो उनके अनुसार एक प्रकार से तर्कवाक्यपरक ही हैं और वे तर्कवाक्य की तरह एक ढंग से अर्थपूर्ण भी होते हैं। और साधारण सोच के अनुकूल तो वे मानसिक तथ्य भी हैं। ऐसी स्थिति में इन तथ्यों के विभिन्न समूहों को आत्माओं की संज्ञा शायद दी जा सकती है। पर तब ऐसी आत्माएँ मनोवैज्ञानिक आत्माएँ ही हो सकती हैं; इन्हें प्रमाणशास्त्रीय (epistemological) या तात्त्विक (metaphysical) या दार्शनिक (philosophical) आत्माएँ नहीं कहा जा सकता।

12.2.1.14. दार्शनिक भाषा (Philosopical Language)—ऊपर के विवेचन से पता चलता है कि निरीक्षण योग्य वस्तुस्थितियों के अलावे अन्य किसी भी प्रकार के अस्तित्व का वर्णन नहीं हो सकता। और जिसका वर्णन नहीं हो सकता उसके सम्बन्ध में हम कैसे कह सकते हैं कि वह है या नहीं है? *ट्रैक्टेटस* के अन्तिम वाक्य में विटगेन्स्टाइन कहते हैं—"जिसके बारे में कोई बोल नहीं सकता, उसके बारे में उसे मौन ही रहना चाहिए"। आत्मा, आत्मा का अमरत्व, ईश्वर, नैतिक या अन्य प्रकार के मूल्य, आदि ऐसे विषय हैं जो दर्शनशास्त्र में बहुत अधिक महत्त्व रखते आये हैं। किन्तु भाषा का तार्किक स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि हम इनके सम्बन्ध में भाषा का प्रयोग कर ही नहीं सकते। भाषा का प्रयोग तो हम केवल प्राकृतिक विज्ञानों की विषय-वस्तुओं के सम्बन्ध में ही कर सकते हैं। दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, आदि शास्त्रों के तथाकथित कथन सभी निरर्थक हैं। दार्शनिक भाषा नाम की कोई भाषा नहीं हो सकती। यहाँ यह कहा जा सकता है कि स्वयं विटगेन्स्टाइन के *ट्रैक्टेटस* के वाक्य दार्शनिक भाषा के उदाहरण हैं तथा उनके माध्यम से उन्होंने बहुत सारी बातें कही हैं। किन्तु विटगेन्स्टाइन का कथन है कि *ट्रैक्टेटस* के वाक्य वर्णनात्मक (descriptive) नहीं है, वरन् व्याख्यात्मक (explanatory) हैं। अतः वे तर्कवाक्य नहीं हैं और इस कारण वे अर्थपूर्ण भी नहीं हैं। *ट्रैक्टेटस* के वाक्य तो उस सीढ़ी के समान हैं जिसके द्वारा ऊपर चढ़ा जा सकता है। ऊपर चढ़ने के बाद सीढ़ी को फेंक देना चाहिए, क्योंकि चढ़ जाने के बाद उसका कोई उपयोग रह नहीं जाता। दर्शनशास्त्र कोई वर्णन नहीं करता; वह तो एक क्रिया (activity) है जिसके द्वारा केवल स्पष्टीकरण होता है।

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

12.2.1.15. अनिर्वचनीय (The Indescribable)—दार्शनिक स्पष्टीकरण की प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण बात जो स्पष्ट होती है वह यह है कि बहुत बातें ऐसी होती हैं जो भाषा के द्वारा अभिव्यक्त नहीं की जा सकतीं। हमने ऊपर देखा है कि विटगेन्स्टाइन के अनुसार तर्कवाक्य वस्तुस्थिति का चित्र होता है। ऐसा चित्रण इसलिए सम्भव होता है कि तर्कवाक्य एवं वस्तुस्थिति में एक ही तार्किक रूप विद्यमान रहता है। इस तार्किक रूप का कोई भाषीय चित्रण (linguistic picturing) नहीं हो सकता, क्योंकि इसी के द्वारा तो चित्रण सम्भव होता है। जो चित्रण को सम्भव बनाने वाला उपकरण (instrument) है, वह स्वयं चित्रण का विषय (object) नहीं बन सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि हम तार्किक रूप का वर्णन नहीं कर सकते, अर्थात् हम उसके बारे में कुछ कह नहीं सकते; पर तब हमें यह तो स्वीकार करना ही होगा कि तर्कवाक्य और वस्तुस्थिति में तार्किक एकरूपता है। इस प्रकार पता लगता है कि बहुत बातें ऐसी हैं जिनका वर्णन तो नहीं हो सकता, पर उनका भान हो सकता है, और वे अपने आपको प्रदर्शित कर सकती हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि विटगेन्स्टाइन के दर्शन में एक ऐसा भी क्षेत्र है जिसका वर्णन तो नहीं हो सकता, पर उसका अवलोकन हो सकता है। यह क्षेत्र अनिर्वचनीय का क्षेत्र है। इसका हम झाँकी का दर्शन भले ही कर ले सकते हैं, पर इसके सम्बन्ध में हम कुछ बोल नहीं सकते।

12.2.2 *फिलॉसॉफिकल इन्भेस्टिगेशन्स (Philosophical Investigations)*

जैसा हमने ऊपर कहा है, *फिलॉसॉफिकल इन्भेस्टिगेशन्स (Philosophical Investigations)* में विटगेन्स्टाइन ने अपने *ट्रैक्टेटस* के विचारों का ही खंडन किया है। हम यहाँ *ट्रैक्टेटस* के उन महत्त्वपूर्ण विचारों की चर्चा करेंगे जिनका उन्होंने अपने परवर्ती दर्शन में खण्डन किया है।

12.2.1 *ट्रैक्टेटस* का खंडन

विटगेन्स्टाइन ने *ट्रैक्टेटस* में विश्लेषणात्मक विधि अपनाई थी। इस विधि के दो रूप थे—एक तथ्यात्मक तथा दूसरा भाषीय। इस विश्लेषण के द्वारा यह दिखलाने का प्रयास किया गया था कि यह विश्व तर्कीय परमाणुओं (logical atoms) का सम्मिश्रण है। तथ्यात्मक रूप के द्वारा यह भी दिखलाया गया था कि विश्व सरलतम तथ्यों का योग है। पर तब विटगेन्स्टाइन ने यह भी कहा था कि तथ्यात्मक विश्लेषण भाषीय विश्लेषण पर ही आधारित होता है। और ठस भाषीय विश्लेषण के द्वारा यह दिखलाया जाता है कि भाषा को सरलतम तर्कवाक्यों में विश्लेषित किया जा सकता है जिनकी सत्यता उनके अनुरूप तथ्यों के अस्तित्व पर निर्भर करती है। लेकिन इन सभी विचारों का विटगेन्स्टाइन ने अपने परवर्ती काल में खण्डन ही कर दिया। उन्होंने कहा कि ये दोनों ही प्रकार के विश्लेषण अनुचित एवं भ्रान्तिपूर्ण हैं। ऐसा कहना भ्रान्तिपूर्ण है कि विश्व की इकाइयाँ तथ्य ही होती हैं। ये इकाइयाँ वस्तुएँ या घटनाएँ भी हो सकती हैं। और भाषीय विश्लेषण के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि यह तो सम्भव ही नहीं है, क्योंकि यह सही नहीं है कि प्रत्येक तर्कवाक्य का कोई बिलकुल निश्चित एवं सुदृढ़ अर्थ रहे ही। इस तरह उन्होंने *ट्रैक्टेटस* की एक मूलभूत पूर्वमान्यता पर ही कुठाराघात कर दिया। अवश्य ही उपर्युक्त विश्लेषण का उद्देश्य था इकाइयों का ठीक-ठाक रूप निर्धारित करना। किन्तु किसी भी वस्तु का ठीक-ठीक रूप-निर्धारण कहाँ तक सम्भव है यह एक विचारणीय विषय है। उदाहरणस्वरूप हम ठीक समय

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

(exact time) के निर्धारण को लें। मान लीजिए मैं आप से कहता हूँ कि आप मुझसे कल संध्या समय ठीक पाँच बजे मिलें। लेकिन आप मुझसे निश्चित तिथि को संध्या समय पाँच बजने के आधा सेकण्ड बाद मिलते हैं। क्या यहाँ यह कहा जायगा कि आप मुझसे ठीक समय पर नहीं मिले? कोई विद्यालय दो महीनों के ग्रीष्मावकाश के बाद किसी तिथि को 10½ बजे दिन में खुलता है, किन्तु घंटी बजाने वाला कर्मचारी 10½ बजे के आधा सेकण्ड बाद घंटी बजाता है। क्या यह कहा जायगा कि विद्यालय विलम्ब से खुला? किन्तु किसी दौड़ में यदि राम नामक दौड़ने वाला श्याम नामक दौड़ने वाले के द्वारा फीता छूने के आधा सेकण्ड बाद फीता को छूता है, तो अवश्य ही श्याम को ही पुरस्कार मिलेगा, राम को नहीं। इस तरह हम देखते हैं कि निरपेक्ष ढंग से ठीक समय का निर्धारण नहीं होता है। परिस्थिति, संदर्भ, उद्देश्य, आदि के अनुसार ही ठीक समय का निर्धारण किया जा सकता है। अनेक दार्शनिक चिंतक सामान्यीकरण (generalization) की उत्कटेच्छा से ग्रस्त रहते हैं। वे किसी शब्द के किसी विशेष परिस्थितिपरक अर्थ को अन्य परिस्थितियों में भी लागू कर देते हैं जिससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कभी-कभी सामान्यीकरण की हमारी प्रवृत्ति हमें भ्रमित कर देती है।

इसी प्रकार किसी भी तर्कवाक्य का कोई सुनिश्चित निरपेक्ष अर्थ नहीं होता है। उसका भी अर्थ परिस्थिति, संदर्भ, उद्देश्य, आदि पर ही निर्भर करता है। ऐसी स्थिति में तर्कवाक्यों के अवयवों का निरपेक्ष ढंग से स्वरूपनिर्धारण नहीं किया जा सकता। चूँकि *ट्रैक्टेटस* में तर्कवाक्यों के निरपेक्ष अर्थ की प्राक्-कल्पना पर ही विश्लेषण आधारित है, इसलिए *ट्रैक्टेटस* पूरी तरह भ्रान्तिमूलक है।

'किसी तर्कवाक्य का अर्थ उस वाक्य को सरलतम खण्डों में विश्लेषित कर ही समझा जा सकता है'—*ट्रैक्टेटस* का यह विचार ही गलत है। इस प्रक्रिया से तो वाक्य का सही अर्थ और अस्पष्ट हो जाता है। 'झाड़ू उस कोने में है'—यह वाक्य अपने आप में एक सुस्पष्ट वाक्य है। विश्लेषण-प्रक्रिया के समर्थक इस वाक्य का इस प्रकार विश्लेषण कर सकते हैं—(1) 'झाड़ू का डंडा उस कोने में है, (2) झाड़ू के तिनके उसी कोने में हैं, (3) झाड़ू का डंडा झाड़ू के तिनकों से बँधा हुआ है।' क्या इस प्रकार का विश्लेषण करने के बाद विश्लेष्य का मौलिक अर्थ कायम रहता है? अवश्य ही इसका उत्तर नकारात्मक होगा। अवयव ही ऐसा विश्लेषण करके हम अर्थ का अनर्थ कर देते हैं। *ट्रैक्टेटस* इसी प्रकार के दोषों से ग्रसित है। निरपेक्ष रूप से सरलतम इकाइयों की खोज ही, जो *ट्रैक्टेटस* का उद्देश्य है, दोषपूर्ण है। *ट्रैक्टेटस* का अर्थ-सिद्धान्त भी दोष से मुक्त नहीं है। *ट्रैक्टेटस* किसी भी नाम को नाम इसलिए मानता है कि वह किसी वस्तु का नाम होता है। नाम के लिए नामी का होना आवश्यक है। इस हेतु *ट्रैक्टेटस* नाम का अर्थ उसके नामी को ही मानता है। चूँकि *ट्रैक्टेटस* के अनुसार अन्ततोगत्वा सरलतम इकाइयों के रूप में तर्कीय परमाणुओं का ही अस्तित्व है, इसलिए उनको सूचित करने वाले शब्द ही सही मायने में नाम हैं। और ये शब्द हैं—'यह', 'वह', आदि। ऐसे शब्दों को 'तर्कनिष्ठ यथार्थ नाम' ('logically proper names') कहा जाता है। अब मान लीजिए हम किसी पेन्सिल को इंगित कर 'यह' शब्द का प्रयोग करते हैं। इस 'यह' से लोग या तो पेन्सिल या पेन्सिल का रंग या पेन्सिल का द्रव्य या पेन्सिल का गुण या अन्य कुछ लक्षण समझ सकते हैं। तो, यह कहना कि 'यह' का अर्थ कोई सरलतम परमाणु-विशेष हैं, निश्चित रूप से गलत है। साधारण बोलचाल में कहे जाने वाले नामों का अर्थ भी उनके नामी ही नहीं

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

होते हैं। जैसे, 'मोहन दास करमचंद गाँधी' एक नाम है। इसका अर्थ मोहनदास करमचंद गाँधी को मानना गलत है; क्योंकि मोहन दास करमचंद गाँधी अब नहीं है, किन्तु 'मोहन दास करमचंद गाँधी' का अर्थ अभी भी कायम है और वह हमेशा कायम रहेगा। इस तरह हम देखते हैं कि नाम का अर्थ उसका नामी नहीं है, बल्कि नामी से स्वतंत्र कुछ और होता है। और नामी के नष्ट हो जाने पर भी वह कायम ही रहता है।

भाषा के वर्णनात्मक स्वरूप को अत्यधिक महत्त्व देना भी अनुचित है। एक तो अनेकानेक शब्दों के अनुरूप कोई वस्तुएँ होती नहीं हैं, जैसे 'लेकिन', 'नहीं', 'शायद', आदि; दूसरे, बहुत ऐसे भी वाक्य होते हैं जो वर्णन नहीं करते, जैसे प्रश्नवाचक, आदेशसूचक, विस्मयबोधक, आदि वाक्य। भाषा को 'नाम-नामी' परक दृष्टि से आँकना एक पूर्वाग्रह है और *ट्रैक्टेटस* इस पूर्वाग्रह से ग्रसित है। *ट्रैक्टेटस* के तर्कवाक्य सम्बन्धी चित्र-सिद्धान्त में भी इसी प्रकार का पूर्वाग्रह पाया जाता है।

ट्रैक्टेटस में विटगेन्स्टाइन ने तर्कवाक्य तथा तथ्य या नाम तथा नामी के परस्पर सम्बद्धन के लिए मानसिक अभिप्राय (mental intention) को आवश्यक माना था। ऐसा सम्भव है कि मैं अन्यमनस्क अवस्था में या गहरी निद्रा में बोल दूँ कि 'वर्षा हो रही है।' ऐसी स्थिति में यदि वर्षा हो भी रही है तो भी मैं सच नहीं बोल रहा होता हूँ, और यदि वर्षा नहीं हो रही है तो भी मैं झूठ नहीं बोल रहा होता हूँ। इसका कारण यह है कि यहाँ मानसिक अभिप्राय के अभाव में वाक्य एवं तथ्य का सम्बन्धन नहीं हो सका है। किन्तु परवर्ती काल में विटगेन्स्टाइन ने इस मानसिक अभिप्रायपरक विचार का भी खण्डन किया और कहा कि यह भी एक भ्रान्तिपूर्ण विचार है। विटगेन्स्टाइन कहते हैं कि यदि मानसिक अभिप्राय के द्वारा वाक्य और तथ्य का परस्पर सम्बन्धन हो सकता हो, तो क्या यह सम्भव है कि किसी भी वाक्य से किसी भी तथ्य का बोध कर लिया जा सके? उदाहरणस्वरूप, क्या अभिप्राय द्वारा 'इस समय आँधी और तूफान के साथ मूसलाधार वर्षा हो रही है' को किसी वस्तुतः विद्यमान सुहाने मौसम को जोड़ा जा सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में विटगेन्स्टाइन कहते हैं कि प्रश्नकर्त्ता स्वयं प्रयत्न कर देख लें। वे इस सम्बन्ध में यह भी पूछते हैं कि क्या किसी वाक्य के बोले जाने के अतिरिक्त कोई अभिप्राय की मानसिक प्रक्रिया भी वस्तुतः घटित होती है। यदि हाँ, तो क्या कोई बिना बोले अभिप्राय की मानसिक प्रक्रिया को घटित करा ले सकता है? इसके उत्तर के लिए भी विटगेन्स्टाइन प्रयत्न करने का ही सुझाव देते हैं। इस तरह की अनेक कठिनाइयों के कारण वे कहते हैं कि अर्थ-निर्धारण को मानसिक प्रक्रिया मानना अत्यधिक भ्रान्तिमूलक है। अर्थ-निर्धारण तो भाषा-प्रयोग के संदर्भ एवं परिस्थिति पर निर्भर करता है। वस्तुतः भाषा-प्रयोग में ही अर्थ निहित होता है। प्रयोग से भिन्न अर्थ का कोई और अस्तित्व नहीं है। इसीलिए विटगेन्स्टाइन ने कहा भी था कि 'भाषा के अर्थ के बारे में मत पूछो, बल्कि उसके प्रयोग के बारे में पूछो'।

जैसा हमने ऊपर कहा है, परवर्ती विटगेन्स्टाइन ने *ट्रैक्टेटस* के अर्थ सम्बन्धी चित्र-सिद्धान्त को भी अमान्य कर दिया है। चित्र-सिद्धान्त के अनुसार सरल तर्कवाक्य वस्तुस्थिति का चित्र होता है। सरल तर्कवाक्य के सभी अवयवों के अनुरूप ही वस्तुस्थिति के अवयव होते हैं। तर्कवाक्य और वस्तुस्थिति के अवयव सरलतम होते हैं और उनमें नाम-नामी का सम्बन्ध होता है। तर्कवाक्य में नामों का पारस्परिक सम्बन्ध उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार नामियों का पारस्परिक सम्बन्ध होता है। अर्थात् दोनों पक्षों में एक ही तार्किक आकार विद्यमान रहता है। और इसी कारण तर्कवाक्य वस्तुस्थिति का चित्र कहा जाता है। किन्तु,

Scanned with CamScanner

Scanned by TapScanner

जब परवर्ती विवेचन के अनुसार भाषीय या तथ्यात्मक सरलतम इकाइयों का अस्तित्व ही अमान्य हो जाता है, तब उन पर आधारित पूर्व विवेचित चित्र-सिद्धान्त भी अमान्य ही हो जाता है। और फिर, तार्किक आकार सम्बन्धी विचार भी निर्विवाद नहीं है। एक बार विटगेन्स्टाइन अपने एक मित्र पी॰ स्राफा (P. Sraffa) के साथ, जो कैम्ब्रिज में अर्थशास्त्र के व्याख्याता थे, किसी यात्रा पर थे और वे आपस में तार्किक आकार के सम्बन्ध में विचार-विमर्श कर रहे थे। विटगेन्स्टाइन तार्किक आकार के पक्ष में तथा स्राफा विपक्ष में तर्क दे रहे थे। सहसा स्राफा ने अपने हाथ की अंगुलियों से अपने चिंबुक को स्पर्श किया और तब अंगुलियों को आगे की ओर बढ़ाते हुए वीभत्सतासूचक मुखाकृति बनायी और विटगेन्स्टाइन से पूछा कि इस वस्तुस्थिति का तार्किक आकार क्या है? तब विटगेन्स्टाइन को भान हुआ कि उनका तार्किक आकार सम्बन्धी विचार ठीक नहीं है और इस पर आधारित अर्थ का चित्र-सिद्धान्त भी समीचीन नहीं है। अब हम परवर्ती विटगेन्स्टाइन के विचारों को एक-एक कर स्पष्ट करेंगे।

Scanned by TapScanner